कहां खोते जा रहे हैं कूप संस्कार?

-भंवरलाल श्रीवास

जब भी गांव की बात आती है तो वहां की संस्कृति, वहां का जीवन हमारे सामने एक स्मृति के रूप में आ जाता है। गांव का पूरा जीवन वहां की संस्कृति और विरासत को लेकर जल और जीवन को अपने संस्कारों में एक स्थापत्य की तरह वे मानते थे। परन्तु आज से लगभग 50 साल पहले तक पानी के महत्व को हमने इतना नहीं जाना जितना कि आज। आज हम पानी के लिए संघर्ष कर पानी की डगर को वहां की पगडन्डियों को बिसर गए हैं, जो हमें अचानक उन जल स्त्रोतों की ओर भोर होते ही खींच ले जाती थी। जहां वे ही फिर परिचित चेहरे होते, यह हमारे नए दिन की शुरुआत भी मानी जाती थीं। पहले जल का मुख्य स्त्रोत कुआं होता था। उन कुंओं में भी किसी-किसी कुओं का जल स्वदिष्ट होता था, सुपाच्य होता था तो पूरा गांव और आस-पास के गांवों की आबादी, उस कुओं पर निर्भर रहते थे और अपने जीवन संघर्ष के बुनियादी सत्य से रोज दो-चार होते थे।

जहां नदी, तालाब, झरने, बावड़ी नहीं होते थे तो कुछ, लोग मिलकर सामूहिक श्रम से कुओं का निर्माण कर लेते थे। जब कोई राजा, जागीरदार, पटेल सक्षम होते थे तो इस धर्म के काम में वे भी अपना धन खर्च करते थे।

जब महिलाएं दो-चार दस के झुण्ड में पनघट तक जाती थीं तो पनघट तक की डगर की दूरी की एहसास किसी को होता नहीं था। पहले परिवार भी बड़े होते थे। घर की जवान बहन-बेटियां पूरे घर का पानी वापरने से लेकर मेहमानों तथा घर के पीने योग्य पानी का स्टॉक करके रखती थीं। हर घर में पर्याप्त पानी रहता था। पनघट पर जब तब महिलाएं आपस में सुख-दु:ख साझा करतीं, अपने जीवन को संघर्षों